Journal of Advances and Scholarly Researches in Allied Education
Vol. 16, Issue No. 2, February-2019, ISSN 2230-7540

'तुलसी की मानसिकता: अलगाव के परिप्रेक्ष्य में'

Meena Kumari*

Research Scholar, Department of Hindi, Delhi University, Delhi

सार – ***मानसिकता शब्द आधुनिक भावबोध का सूचक है। प्रथम विश्वयुद्ध के उपरान्त हमारी समीक्षा में अनेक नवीन शब्दों का आगमन हुआ जिनसे हमारे वैयक्तिक तथा सामाजिक जीवन की अभिव्यंजना होती है। मानसिकता का आशय मनोजगत की द्वन्द्वात्मक स्थिति से है। मन के भीतर उठने वाले संकल्प-विकल्प और उनकी प्रतिक्रिया स्वरूप मानवीय दृष्टि का निर्माण-मानसिकता की परिधि में आता है। 'अलगाव' मानसिकता की निर्मित का महत्वपूर्ण घटक है। अतः संक्षेप में 'अलगाव' की वैचारिक भूमिका क्या है, यह जान लेना भी आवश्यक हैं। 'अलगाव' का अंग्रेजी पर्यायवाची शब्द 'एलियनेशन' है जिसकी व्युत्पत्ति लेटिन शब्द 'एलियनेशियो' से हुई है जिसके मूल में ही 'अलगाव' की विभिन्न स्थितियों में मिलता है।***

----------X----------

प्राचीन काल में 'अलगाव' शब्द का प्रयोग तीन क्षेत्रों में हुआ है-

1. विधि के क्षेत्र में अलगाव का अर्थ होता था व्युत्पत्ति अथवा स्वामित्व का हस्तांतरण।
2. मनःचिकित्सा के क्षेत्र में अलगाव का अर्थ लिया जाता था मानसिक विकृति से और
3. सामाजिक क्षेत्र में अलगाव का अर्थ होता था अपनों से कट जाना अथवा उदासीन हो जाता।[1]

'अलगाव' का प्रयोग परायेपन अथवा अजनबीपन के लिए प्रायः होता है। अलगाव की मूल चेतना वहीं उभर कर आती है जहाँ व्यक्ति अपने पूर्व संबंधों से बिलकुल कट जाता है और उसके पुनः संबंधित होने का कोई सवाल नहीं रहता है। महान विचारक हीगेल भी इसी को स्वीकारते हैं। डॉ. सिंहल की ये पंक्तियाँ भी इसी की पुष्टि करती हैं- 'वास्तव में अलगाव की स्थिति वहीं उत्पन्न होती है जहाँ कोई वस्तु पूर्णतया पूर्व संबंध से कट जाती है।[2]

समाज में अलगाव का प्रश्न विशिष्ट जनों से प्रायः जुड़ता आया है। प्रतिभा के धनी विचारशील, ज्ञानी, कवि और दार्शनिक जो अपनी लीक स्वयं बनाते हैं, उन्हें ही अलगाव का दंश सहन करना पड़ा है। बड़े-बड़े बुद्धिवादी समाज से टकराये, बड़े-बड़े दार्शनिकों ने, समाज सुधारकों ने सम्राटों की सत्ता को ललकारा है, समाज के मठाधीशों की परवाह नहीं की है-परिणाम यह हुआ कि वे समाज से कट गए और शासक से उपेक्षित तथा तिरस्कृत कर दिये गए। उन्हें जहर का प्याला पीना पड़ा।' यह एक ऐतिहासिक तथ्य है कि विश्व के सभी बड़े दार्शनिकों और साहित्यकारों को अपने समकालीन समाज और परिवेश में गहन अलगाव भोगना पड़ा था तथा मीरा को उसके लिये विषपान करना पड़ा था। अतः यह कहना कि अलगाव का प्रश्न आज के युग से जुड़ा है-नितांत भ्रामक है। डॉ. शिवप्रसाद सिंह की ये पंक्तियाँ इस कथन की पुष्टि करती हैं- 'संत्रास और संकट नई चीजें नहीं हैं, और न ही आज के मनुष्य तक सीमित हैं।'[3] इसी को अधिक विस्तार से डॉ. सिंहल ने इस प्रकार समर्थित किया है- 'प्रत्येक युग में मनुष्य को किसी-न-किसी स्तर पर अलगाव भोगना पड़ा है। अतः यह कहना कि अलगाव आधुनिक यांत्रिक वैज्ञानिक और दूषित राजनीति से विषाक्त युग की देन है-सर्वथा भ्रामक धारणा है।[4] मध्य युग में अलगाव और अजनबीपन का बोध, घृणामूलक न होकर सहिष्णुता, करूणा, स्नेह-क्षमा और नैराश्य या विरक्ति बोधक होता था। आज के युग में इसकी परिणति वितृष्णा और घृणा है।

तुलसीदास के युग की परिस्थितियाँ आज के युग की परिस्थितियों से भिन्न थीं। अजनबीपन और अलगाव की समस्या वहाँ भिन्न कारणों से उत्पन्न होती रही जिससे तुलसीदास को जूझना पड़ा। तुलसी को जन्म लेने के उपरान्त की अलगाव और अजनबीपन भोगना पड़ा। यद्यपि तुलसी का जन्म उच्चकुल में हुआ था, किन्तु कुग्रह में जन्म लेने के कारण अनिष्ट की भावना से प्रेरित माता-पिता ने उन्हें त्याग दिया- 'जननी जनक तज्यौ जनमि, करम बिनु बिधिहु सृज्यौ अबडेरे।'[5] अतः तुलसी को द्वार-द्वार बिललाना पड़ा, भीख माँगकर पेट भरना पड़ा, दरिद्रता से जूझना पड़ा- 'व्यापत

www.ignited.in

त्रिविध ताप तनु दारून, तापर दुसह दरिद्र सतायो।'[6] तथा 'जनम को भूखो भिखारी'[7] घर से निकाले जाने के कारण तुलसी का शिशु मानस ही अलगाव महसूसता रहा। बड़े होने पर कहते हैं उनकी पत्नी ने उन्हे फटकारा। एक गरीब, समाज से तिरस्कृत और टूटे हुए व्यक्ति को सहारा मिलता है पत्नी के स्नेहिल संस्पर्श से। तुलसी अपने जीवन की एक मात्र आधार अपनी प्रिया पत्नी के बिना नहीं रह सकते थे। अतः वह पत्नी के पीछे-पीछे उसके मायके तक चले गये, जहाँ उन्हें पत्नी की डाँट और प्रताड़ना सहनी पड़ी- 'सब ने कठिन जाति अप्मानू' भी तुलसी को सहन करना पड़ा। तुलसी की मानसिकता को समझा जा सकता है कि वह किन भावभूमियों में सृजित हो रही थी। तुलसी को फिर घर छोड़ना पड़ा। फिर अपने लोगों से कट कर अलग होना पड़ा। इन अनुभवों ने तुलसी के जीवन को विषाद और अकेलेपन से भर दिया। इन अनुभवों को समेटे हुए तुलसीदास साहित्य के क्षेत्र में आते हैं। यहाँ तुलसीदास देखते हैं कि उनके युग के उन्हीं कवियों को यश, मान और प्रतिष्ठा अर्जित हो रही है जिनका संबंध राजदरबारों से है। उन्होंने अकबरी दरबार के कवि बीरबल, रहीम और गंग को यश और सम्मान प्राप्त करते देखा था और देखा था कि कवि के रूप में वे कितने बौने थे। स्वाभाविक है कि तुलसी के मन को इससे अवश्य चोट पँहुची होगी। यद्यपि तुलसी की काव्य प्रतिभा और महत्व से प्रभावित अबकर ने उन्हें मनसबदारी का पद देना चाहा था, जिसे तुलसीदास ने पूरी तरह अस्वीकृत कर दिया था- 'तुलसी अब का होहिंगे नर के मनसबदार।'

अलगाव के महादंश को भोगते हुए तुलसीदार रचना के क्षेत्र में उतरते हैं। उन्होंने अपनी अनेक रचनाओं में कहीं सूक्ष्म संकेत रूप में और कहीं विस्तार से अपने इस दंश को व्यंजित कर दिया है। कवितावली और विनयपत्रिका में तुलसीदास ने अपने अजनबीपन, समाज के एकाकीपन, माता-पिता और पत्नी से अलगाव की पीड़ा को, तत्कालीन राजसत्ता द्वारा उपेक्षित धर्म और राष्ट्र की पीड़ा को तथा ढ़ोंगियों एवं धर्म प्रवंचकों द्वारा वर्ण-व्यवस्था को छित्रभिन्न किये जाने की पीड़ा को व्यक्त किया है। तुलसी का वैशिष्ट्य इसमें है कि जहाँ सामान्य व्यक्ति अपनी अलगाव की पीड़ा को अपने में ही सीमित कर लेता है; वहाँ तुलसीदास विशिष्ट को सामन्यीकृत अथवा समाजीकृत कर देते हैं और इसीलिए इनके अलगाव की पीड़ा समाज के लिए कल्याणकारी सिद्ध होती है और तुलसी विश्व के महान पुरूषों के मध्य गौरवशाली स्थान ग्रहण करते दीखते हैं।

अलगाव के विभिन्न आयाम

दरिद्रता एवं याचकता- बाल्यावस्था में ही तुलसीदास को घर छोड़ना पड़ता है। वह याचक बनकर द्वार-द्वार भटकते हैं। बड़ी दैन्य स्थिति से तुलसीदास गुजरे थे- 'द्वार-द्वार दीनता कही काढ़ि रद परि पाहू।'[8] अतः याचक जीवन के यथार्थ से तुलसीदास बहुत गहरे जुड़े हुए थे। वस्तुतः यह उस युग के याचकों के जीवन का सही दस्तावेज है जो बतलाता है कि पेट भरने के लिए दो रोटियाँ भी बिना द्वार-द्वार भटके नसीब नहीं होती थीं- 'रोटी द्वै हों पावौं राम रावरी ही कानि हो।'[9] तुलसी चार दाने चने की प्राप्ति को 'चारि फल' की प्राप्ति मानते हैं। पराकाष्ठा तो वहाँ पर पहुँच जाती है कि चार चने चबाकर हाथें को चाटते भी हैं कि शायद कुछ अंश हाथों में शेष रह गया हो। इस प्रकार पेट खलाये, मुँह बाये, नंगे पाँव याचक बने तुलसी घूमते हैं- 'तब लौं उबैने पाँय फिरत पेटै खलाय। बाये मुँह सहत पराभौ देस-देस को।'[10] वह चाहते तो अच्छे-अच्छे वस्त्र हैं, किन्तु उनके नसीब में टाट का टुकड़ा ही है। यह वर्णन तुलसी के वैयक्तिक जीवन के ही हैं, किन्तु उस युग में अकेलेपन तथा याचक जीवन की पीड़ा को भोगनेवाले तुलसी अकेले ही नहीं थे अपितु, समाज के गरीब किसान, मजदूर, धोबी, बढ़ई, कहार, केवट सभी याचक बने थे। उस समय समाज की अर्थ व्यवस्था ही ऐसी थी कि-

'खेती न किसान को, भिखारी को न भीख,

बलि बनिक को वनिज न चाकर को चाकरी

जीविका-विहीन लोग सीद्यमान सोच-बस

कहैं एक एकन सों 'कहां जाई, का करी!'[11]

तत्कालीन समाज की विषमता का चित्र कहां प्रस्तुत होता है, जहाँ एक ओर चार चने और दो रोटियाँ प्राप्त करना कठिन है वहीं दूसरी ओर सामन्ती ठाठ-बाट और वैभव-विलास है-

झूमत द्वार अनेक मतंग जंजीर जरे मदअंबु चुचाते।

तीखे तुरंग मनोगति चंचल, पौन के गौनहुँ ते बढ़ि जाते।।

भीतर चंद्रमुखी अवलोकति, बाहर भूप खरे न समाते।

ऐसे भए तो कहा तुलसी जुपै जानकी नाथ के रंग न राते।।[12]

जातीय अपमान तथा पारिवारिक संबंधों का विच्छेद- तुलसी को अपने जीवन में अनेक प्रकार के मानसिक तनावों से गुजरना पड़ा था। बचपन में माता-पिता ने त्यागा, युवावस्था में पत्नी से तिरस्कार मिला, आगे चलकर पंडित समाज से अवमानना-इसके कारण तुलसी का व्यक्तित्व प्रखर हो उठता है। उन्हें उन संबंधों की कोई परवाह ही नहीं रही। अब तो

www.ignited.in

उनके जीवन में राम के संबंध का ही महत्व है- 'मनियत सबै राम के नाते।' संसार में उन्हें भाई का भरोसा नहीं, माता-पिता उनके हितैषी नहीं, राम ही उनके लिए सब कुछ हैं-वही पार लगायेंगे।

'भाई को भरोसो न खरो सों बैर बैरीहूँ सों।'

बल अपनो न हितू जननी न जनको।

x x x x

राम ही के नाम तें जो होई सोई नीको लागै। ऐसोई सुभाव कछु तुलसी के मन को।[13]

तुलसी के लिए अब जातिगत संबंध भी थोथे लगने लगे। उच्चकुल में जन्म लेकर भी वे अनाथ कहलाये-रघुनाथ अनाथ के नाथ सही। 'पेट की आग शांत करने के लिए उन्होंने जाति के बंधन तोड़े और सबके द्वारे पर माँग-माँग कर खाया-

'जाति के, सुजाति के, कुजाति के पेटागबिस।

खाये टूक सबके बिदित बात दुनी सो।'

ब्राह्मण कुल में जन्म लेकर ही उन्हें कुजाति के टूक खाने पड़े जिसे सारी दुनिया जानती है। तुलसी के व्यक्तित्व में जातिगत अपमान एवं पारिवारिक तिरस्कार से उग्रता आयी इसीलिए उन्होंने जात-पात पर करारी चोट की है। उन्हें किसी की बेटी से बेटा व्याहना नहीं- 'काहू की बेटी सों बेटा न ब्याहव। काहू की जाति बिगार न सोऊ।'[14] तुलसी तो अब परम निद्र्वन्द्व हो गये हैं इसलिए तो वे कहते हैं-

'लोग कहैं पोचु, सो न सोचु, न सकौचु मेरे,

ब्याह न बरेखी, जाति-पाँति न चहत हों।'[15]

मध्य युग आस्था और भक्ति का युग है। निराशा, संत्रास एवं अकेलेपन से मुक्ति पाने के लिए तुलसी को राम के प्रति अपने को समर्पित घोषित करना पड़ता है। तुलसी राम के अनन्य भक्त हैं। वह मानते हैं कि जब तक राम की शरण में नहीं गये तभी तक उन्हें याचकता, गरीबी, अपमान, अलगाव की अनुभूति होती रही। एक बार राम की शरण में पहुँच जाने पर इन सभी से मुक्ति मिल जाती है।

'हौं तो सदा खर को असवार।

तिहारोई नाम गयंद चढ़ाये।।[16]

इस प्रकार तुलसी अपने अकेलेपन को राम भक्ति के माध्यम से दूर करते हैं।

तुलसीदास ने अपने अलगाव और एकाकीपन को संसार की निस्सारता और माया के प्रभाव की व्यप्ति के माध्यम से प्रकट किया। साथ ही कलियुग वर्णन के बहाने से भी उन्होंने अलगाव की समस्या प्रस्तुत की। तुलसीदास ने माता-पिता, पत्नी बन्धु-बांधव सभी को माया कहा है-

झूठो है, झूठो सदा जग संतक हंत जे अंत लहा है।

ताको सहै सठ संकट कोटिक, काढ़त दंत, करंत हड़ा है।

जानपनी की गुमान बड़ो, तुलसी के विचार गँवार महा है।

जानकि जीवन जान न जान्यो तौ जान कहावत जान्यो कहा है।[17]

यह तथ्य तुलसीदास के व्यक्तिगत जीवन के अकेलेपन को रेखांकित करता है। यह तुलसी के जीवन का यथार्थ है, जिसे उन्होंने माया कहकर छिपा देने का यत्न किया। अपने जीवन के महादंश को तुलसी कलियुग वर्णन में भी प्रकट कर देते हैं। व्यक्ति चाहे कितना बड़ा हो जाए, किन्तु जीवन की वास्तविकताओं को छिपाने के प्रयत्न के बावजूद भी वह छिपा नहीं पाता है। तुलसी ने कलियुग में सभी नीति-रीतियों को उल्टी दिशा में प्रवाहित देखा है। राजा और सामान्त जिनके आश्रय में तत्कालीन कला और साहित्य, विद्वान और पंडित पूजित होते थे, उनके यहाँ अब चाटुकार, मसखरे और ढोंगी आश्रय पा रहे थे। कोई भी प्रबुद्ध कवि अथवा चिन्तक इससे प्रभावित हुए बिना नहीं रह सकता। उसकी प्रतिक्रियाएँ भले ही ठेठ रूप में प्रकट न हों, किन्तु कलात्मक सूक्ष्मता से वह प्रतिक्रियाएँ अभिव्यक्त हो जाती हैं-

राजमराल के बालक पेलिकै पालत लालत खूसर को।

सुचि सुंदर सालि सकेलि सुबारि के बीज बटोरत ऊसर को।

गुन-ज्ञान-गुमान भभेरि बड़ी, कल्पद्रुम काटत मूसर को।

कलिकाल विचार अचार हरो, नहिं सूझै कछू धमधूसर की।।[18]

इन पंक्तियों के माध्यम से तुलसीदास जी ने तत्कालीन राज्याश्रित कवियों पर प्रहार किया है। कलियुग में दुष्ट फूल-फल रहे थे और साधु पुरूष किस तरह से दुःखी हो रहे थे, जिनमें से तुलसी एक थे-

www.ignited.in

फलै फुलैं फैलैं खल, साधु पल पल

खाती दीपमालिका ठठाइयत सूप हैं।

उपर्युक्त विवेचन से हम तुलसीदास की मानसिकता को समझ सकते हैं। तुलसीदास ने आजीवन विविध प्रकार के अलगाव को भोगा, किन्तु उनके मानस में वह विष बनकर नहीं रह पाया। उन्होंने अमृत बनाकर समाज को वापस कर दिया। जिस समाज से उन्होंने अजनबीपन पाया था, उसे उन्होंने राम की ओर मोड़ दिया, जिसकी शरण में जाने पर सभी का अलगाव दूर हो जाता है।

संदर्भ

1. विशेष अध्ययन के लिए देखिए- 'अलगाव दर्शन और साहित्य' ले॰ डॉ. बैजनाथ सिहंल
2. विशेष अध्ययन के लिए देखिए- 'अलगाव दर्शन और साहित्य' ले॰ डॉ. बैजनाथ सिहंल, पृ॰ 53
3. देखिये, 'अलगाव दर्शन और साहित्य' डॉ. बैजनाथ सिंहल पृ॰ 219
4. देखिये, 'आधुनिक परिवेश और नबलेखन' पृ॰ 70
5. देखिये, 'अलगाव दर्शन औश्र साहित्य' डॉ. बैजनाथ सिंहल,
6. विनय पत्रिका, पद-227
7. विनय पत्रिका, पद-244
8. विनय पत्रिका, पद-219
9. विनय पत्रिका, पद-175
10. कवितावली, पद-63
11. कवितावली, पद-125
12. कवितावली, पद-97
13. कवितावली, पद-44
14. कवितावली, पद-77
15. कवितावली, पद-106
16. विनय पत्रिका, पद-76
17. कवितावली, पद-60
18. कवितावली, पद-39, कवितावली, पद-103

Corresponding Author

Meena Kumari*

Research Scholar, Department of Hindi, Delhi University, Delhi

meena.kumari101184@gmail.com